ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.20, No.3, July-Sept., 2025/4

भारत एक राष्ट्र के रूप में

अखिलेश कुमार एवं अवध नारायण

https://doi.org/ 10.61410/had.v20i3.243

सारांश– भारतीय चिन्तन परम्परा में एक राष्ट्र के रूप में भारत का स्वरूप अपने आप में एक अत्यत्न व्यापक अवधारणा को समाहित किये हुए है। भारत लम्बे समय तक विदेशी आक्रान्ताओं के अधीन रहा जिसके कारण समाज में अनेक विविधताएँ दृष्टिगोचर हुई लेकिन फिर भी भारतीय समाज अपने मूल सिद्धान्तों को आत्मसात किये रखा। और अपने सांस्कृतिक बंधन को बनाये रखा। जिसने चिरकाल से ही भारत को एक राष्ट्र के रूप में एकता की डोर में बांधे रखा है। जहां पश्चिमी राष्ट्र की अवधारणा नस्लीय, जातीय और राज्य आधारित है। जिसकी तुलना भारत से नहीं की जा सकती है। भारत का प्राकृतिक स्वरूप ही भारत को एक राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करता है। जिसका भाव अतीत काल से लेकर वर्तमान काल तक निरिन्तर प्रवाहमान दिखाई दे रहा है। त्योहार, रीति–रिवाज परम्पराएँ इतिहास, भूगोल आदि के माध्यम से राष्ट्र की अभिव्यक्ति होती है। राष्ट्र भारतीय राजनीतिक चिंतन परम्परा का आधार रहा है। भारत का एक राष्ट्र के रूप में दर्शन हमें हमारे मनीषियों द्वारा किये गये वैदिक मंत्रों में स्पष्ट दिखाई देता है। इस तरह के राष्ट्र की मान्यता पाश्चात्य चिन्तन में दूर–दूर तक दिखाई नहीं देती है।

मुख्य शब्दः– राष्ट्र, राज्य, संस्कृति, आक्रान्ता, अखण्ड, परम्पराएँ, चिन्तन, द्रष्टा, मनीषी, वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वधर्म समभाव आदि।

भारत काएक राष्ट्र के रूप में अस्तित्व हमें चिरकाल से ही दिखाई देता हुआ प्रतीत होता है। अनेक उतार चढ़ावों के बावजूद भारत का राष्ट्र स्वरूप निरन्तर जीवंत रहा है।[1] भारत में अनेक धार्मिक, सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक विविधाएँ होने के बावजूद भी समाज में ऐसी सांस्कृतिक एकता झलकती है। जो चिरकाल से भारत को एक राष्ट्र के रूप में बांधे रखा है। इस एकता का आधार मुख्यतयः हमारी सामी संस्कृति रही है। भारत कई हजारो वर्षो तक किसी न किसी रूप में अनेकों विदेशी आक्रान्ताओं से संघर्षरत रहा है। इन विदेशी आक्रान्ताओं ने अपने अमानवीय कृत्यों के माध्यम से भारत की राष्ट्रीय एकता को गहरा आघात पहुँचाने का प्रयास किया लेकिन वे अपने इस कृत्य में पूर्णतयः कामयाब न हो सके। समय–समय पर अनेक महापुरुषों एवं जनआन्दोलनों के द्वारा भारत में राष्ट्रीय भाव की लहर निरन्तर आगे बढ़ती रही। जिसके परिणामस्वरूप भारत की राष्ट्रीय एकता अखण्डता आज भी अक्षुण दिखाई देती है।

जबकि पश्चिमी चिन्तन परम्परा में भारत कभी भी एक राष्ट्र नहीं रहा, बल्कि अनेक जातियों का निवास स्थान रहा है।[2] जिसका सीधा सम्बंध उनके द्वारा भारत में अनेक नस्लों, जातियों, धर्मो को मानने वालों से लिया गया है। पश्चिमी इतिहासकारों ने माना कि भारत प्रशासनिक और राजनीतिक दृष्टि से कभी भी एक नहीं रहा है। जो फिर एक राष्ट्र कैसे हो सकता है? उनका मानना है कि राष्ट्र की अवधारणा पश्चिम की देन है। ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स ने अपनी पुस्तक 'ब्रिटिश भारत का

- **शोध छात्र,** इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या
- **एसो. प्रोफेसर,** इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या

इतिहास में लिखा है कि भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि एक महाद्वीप है।[3] एक अन्य इतिहासकार जॉन माल्कम ने अपनी पुस्तक 'पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' में सिख और मराठों तक को अलग नेशन बताया है।[4] पाश्चात्य विचारक ही नहीं बल्कि पाश्चात्य चश्मे से भारत को देखने वाले रोमिलाथापर जैसे इतिहासकारों का भी यह मानना है कि भारत के एक राष्ट्र के रूप में संगठित होने और राष्ट्रीतया के उदय और विकास में केवल अंग्रेजी शासन का योगदान रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य के अभाव में भारतीय कभी भी भारत को राष्ट्र का गौरव नहीं दिलवा सकते थे। किन्तु यह एक भ्रान्तीय अवधारणा है जिसको आधार रूप में ब्रिटिश इतिहासकार और कुछ भारतीय इतिहास भी मानते है। जबकि सच्चाई यह है कि भारत में ऋग्वैदिक काल में ही जब ब्रिटिश शासन की कल्पना भी नहीं रही हहोगी तब हमारे मनीषियों ने 'वय राष्ट्रे जागृयाम पुरोहितः के रूप में राष्ट्र की अभिव्यक्ति की थी। यह राष्ट्र राज्य नहीं राष्ट्र एक व्यवस्था है जो राष्ट्र का सरंक्षण और पोषण करती है।[5]

ब्रिटिश शासन का मानना है कि भारत कभी भी एक राष्ट्र नहीं रहा, भारतीयों को राष्ट्रीयता से परिचय हमने करवाया है। लेकिन इसके इतर देखा जाए तो भारत में कभी भी राजनीतिक एकता न रही हो फिर भी भारत सांस्कृतिक धरातल पर हमेशा एक राष्ट्र रहा है। जहाँ यूरोपीय राजनीतिक विचारकों ने राजनीतिक एकता को राष्ट्रीयता का पर्याय माना है वही इस्लामिक देशों ने धर्म को राष्ट्रीयता का आधार माना है। वहीं भारतीय विचारकों ने प्राचीन काल से ही भारत की संस्कृति को जिसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना कूट कूटकर भरी है। जो समस्त विश्व को मानवता का संदेश देती हो को राष्ट्रीयता का केन्द्र बिन्दु माना।

राष्ट्र भारतीय राजनीतिक चिंतन परम्परा का आधार रहा है। इसका उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थां में मिलता है। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि। हमारे राष्ट्र जीवन की रचना कुछ इस प्रकार थी कि स्नान करते समय जब ''गंगे च यमुने चैव गोदावरि, सरस्वती, नमर्दे सिंधु कावेरी जलेस्मिन सन्निधिं कुरू'' श्लोक का उच्चारण करते है। तो सम्पूर्ण भारतवर्ष का स्मरण हो जाता है।[6] यही कारण था कि आगे चलकर विदेशी सत्ता का राज होने के बावजूद भी भारतीय राष्ट्रीय स्वरूप आज भी जीवंत बना हुआ है।

राष्ट्र शब्द की उत्पत्ति रज धातु से हुई है जिसमें औणादिक प्रत्यय को जोड़ा गया है। तत्पश्चात् इसका अर्थ–'राजते दिव्यते प्रकाशते शोभते इति राष्ट्रम' अर्थात् जो स्वयं देदीप्यमान होने वाला है वह राष्ट्र कहलाता है। लेकिन पाश्चात्य दर्शन में राष्ट्र के रूपान्तरण को नेशन (Nation)कहा गया है। नेशन शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'नौशियों' से हुआ है। नेशियों का अर्थ 'पैदा होना' अथवा 'जन्म लेना' है अर्थात् नेशन उस मानवीय समूह को कहते है जो जाति, धर्म, भाषा परम्परा आदि के परिणाम स्वरूप एक हुआ हो।''[7]

Oxpord dictionary में राष्ट्र का अर्थ इस प्रकार दिया गया है कि–'A Large number of people of mainly common discent, language, history etc, usually inhabiting a territory bounded by defined limits and forming a society under one government."[8]

गांधी जी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज में भारत को एक राष्ट्र के रूप में कैसे परिभाषित किया जा सकता है इस बारे में उन्होंने कहा कि सच्चा राष्ट्र आन्तरिक एकता और स्वशासन से आता

है, न कि केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता से।[9] सुभाष चन्द्र बोस ने अपनी पुस्तक 'द इण्डियन स्टगल' में राष्ट्र पर विचार दिया है।

राष्ट्र शब्द का प्रयोग अनेक प्राचीन ग्रन्थों में भी देखने को मिलता है जैसे ऋग्वेद में 'राष्ट्रक्षत्रियस्य', 'राजा राष्ट्रानाम', राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य', आदि सन्दर्भो से ज्ञात होता है कि क्षत्रियों द्वारा शासित भू भाग को राष्ट्र कहते है। यजुर्वेद के दशवें अध्याय, अथर्ववेद में राष्ट्र शब्द का प्रयोग 58 बार हुआ है। वैदिक काल में राष्ट्र को समेकित अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे– अभिराष्ट्र, राष्ट्रगोप आदि। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी सप्तांग सिद्धान्त के अन्तगति राष्ट्र शब्द का उल्लेख हुआ है। कामन्दक के नीतिसार में राजा द्वारा राष्ट्र समृद्धि और रक्षा की कामना की गई है।[10]

इतिहास किसी भी राष्ट्र के महानतम अवसरों का साक्षी होता है। इसलिए वहाँ के नागरिकों को अपने राष्ट्र के इतिहास एवं उसके स्वरूप का बोध होना आवश्यक होता है। जिसके परिणाम स्वरूप उस राष्ट्र के नागरिकों में अपने राष्ट्र के प्रति अपनापन का भाव जागृत होता है और आने वाली पीढ़ियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार होता है।

हमारे मनीषी राष्ट्र के ऐसे कल्याण की कल्पना करते थे जिसमें मूल भारतीय जीवन दर्शन, धर्म, परम्पराओं, अस्था नैतिकता के आधार पर राष्ट्र का विकास व कल्याण हो सके।

आज के समय में प्रत्येक राष्ट्र अपने–अपने हितों की पूर्ति के लिए प्रयन्नशील है। जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय हित पर अवसरवादिता हावी होती जा रही है। जिस कारण राष्ट्रों में आपसी टकराव की स्थित बनती जा रही है। लेकिन भारतीय संस्कृति जिसका चिंतन चिरकाल से ही अद्वितीय रहा है। अपनी 'वसुधैव कुटुम्बकम' सत्यमेव जयते, सर्वधर्म समभाव आदि विशेषताओं को धारण किये हुए समस्त जगत के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः भारत एक राष्ट्र और अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं के चलते विश्व के कल्याण के लिए एक अद्वितीय मार्ग प्रशस्त करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– डॉ0 शशि तिवारी– संस्कृत साहित्य में राष्ट्रवाद औरर भारतीय राज्यशास्त्र, पृष्ठ 1

2– वही पृष्ठ 45

3– James Mill (1817)- The History of British India

4– John Malcolm (1926)- Polical History of India, Vol.1

6– चन्द्रशेखर परमानन्द भिषीकर : पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचारदर्शन, खण्ड 5 पृष्ठ 53

7– डॉ0 शशि तिवारी– संस्कृत साहित्य में राष्ट्रवाद और भारतीय राज्यशास्त्र, पृष्ठ–2

8– Oxford English Dictionary page 993

9– महात्मा गांधी– 'हिन्द स्वराज' पृष्ठ 44

10– विभा उपाध्याय– राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद की भारतीय अवधारणा, पृष्ठ 22